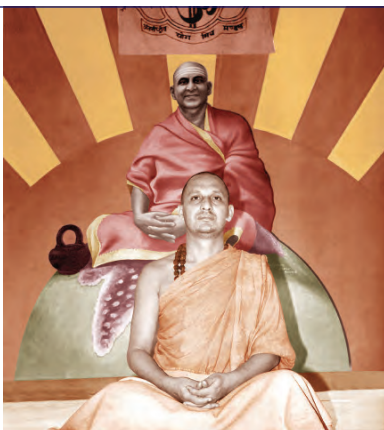


बिहार योग विद्यालय का इतिहास

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

बिहार योग विद्यालय का इतिहास



1963–2013
GOLDEN JUBILEE

WORLD YOGA CONVENTION 2013
GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA
23rd–27th October 2013

बिहार योग विद्यालय का इतिहास

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रथम प्रकाशन 2013

ISBN: 978-93-81620-67-0

© बिहार योग विद्यालय 2013
प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—एजीएन ऑफसेट प्रिंटर्स,
ग्रेटर नोएडा

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट से लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक के किसी भी अंश का अन्यत्र मुद्रण या अन्य किसी रूप में प्रयोग वर्जित है।

Dedication Tipon
of
Sw. Sivananda

*Dedication Tipon
of
Sw. Satyananda*

विषय सूची

एक आंदोलन का जन्म	1
प्रशिक्षण, अनुसंधान और सामाजिक प्रयोग	14
योग के नए आयाम	28

एक आंदोलन का जन्म



इस शताब्दी में योग की कहानी 1940 के दशक से शुरू होती है। उस समय तक लोग योग के बारे में अनजान थे। कोई नहीं जानता था कि योग क्या है, इसका अभ्यास कैसे किया जाता है, अपने विकास के लिए इसका उपयोग कैसे किया जाए। योग का अस्तित्व तो था, पर इसे केवल त्यागियों, वैरागियों और साधु-संन्यासियों की साधना माना जाता था। योग समाज से बहुत दूर था।

सन् 1943 में हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद सरस्वती ने ऋषिकेश में गंगा किनारे शिवानंद आश्रम की स्थापना की। उनके दिव्य जीवन के संदेश को सुनकर अनेक युवा लोग वहाँ आ पहुँचे, और स्वामी शिवानंद जी का यह मिशन 'दिव्य जीवन संघ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

स्वामी शिवानंद जी द्वारा दिव्य जीवन का आह्वान

स्वामी शिवानंद जी ने सभी के लिए जो मुख्य संदेश दिया, वह यही कि सांसारिक, तनावग्रस्त जीवन भी स्पष्टता, सहजता, मर्यादा, रचनात्मकता और अपनी आंतरिक आध्यात्मिक प्रकृति की निरंतर सजगता के साथ जिया जा सकता है। जो व्यक्ति अपनी इस उच्च आध्यात्मिक प्रकृति का विकास कर, एक रचनात्मक और अनुशासित जीवन जी सकता है, वही दिव्य जीवन जीता है। दिव्य जीवन एक समन्वित, सुव्यवस्थित और सामंजस्यपूर्ण जीवन का ही दूसरा नाम है। स्वामी शिवानंद जी ने जब दिव्य जीवन संघ की स्थापना की तब यही उनका मुख्य उद्घोष और आह्वान बना।



दिव्य जीवन का ज्ञान और अनुभव प्रदान करने के लिए स्वामी शिवानंद जी ने दो विधियों का उपयोग किया – योग और वेदांत। योग को साधना रूप में अपनाकर, मनुष्य के निम्न स्वभाव का रूपान्तरण कर शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक संतुलन एवं सामंजस्य प्राप्त होता है। वेदांत द्वारा इस भौतिक जीवन में एक आदर्श को जीते हुए स्वयं को परम तत्त्व से जोड़ने का प्रयास होता है। इस प्रकार स्वामी शिवानंद जी ने योग और वेदांत के माध्यम से लोगों को आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा दी। कालान्तर में उन्होंने अपने शिष्यों को एक आदेश दिया – योग का सर्वत्र प्रचार करो।

अनेक शिष्यों ने उनसे पूछा, ‘आप हमें योग का प्रचार करने को क्यों कह रहे हैं, जबकि संन्यास परम्परा के अनुसार हम वेदांत के अनुयायी हैं, हम समाज से दूर रहते हैं। आप क्यों चाहते हैं कि हम समाज में योग का प्रचार करने जाएँ, जब योग हमारा विषय है ही नहीं?’ उन्होंने जवाब दिया, ‘हाँ, तुम अपने निजी जीवन में जरूर संन्यासी हो, इसलिए संन्यासी की तरह जियो। तुम्हारी आध्यात्मिक परम्परा वेदांत की है, उसका भी अवश्य पालन करो। लेकिन अपने बाह्य, सामाजिक जीवन में तुम्हें योग का प्रचारक बनना है, और इसलिए उस भूमिका को भी अपने जीवन में शामिल करो।’

इस प्रकार स्वामी शिवानंद जी ने अपने शिष्यों के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को स्पष्ट रूप से विभाजित किया। उन्होंने कहा, ‘अपने निजी जीवन में तुम संन्यासी हो, इसलिए संन्यासी की तरह रहो, पर अपने सामाजिक जीवन में योग-प्रचारक हो, इसलिए योग का प्रचार करो। दोनों भूमिकाओं में वेदांत के सिद्धांतों और आदर्शों को जियो, क्योंकि अंत में यही तुम्हारा उत्थान करेगा और सही मायने में तुम्हें मनुष्य बनाएगा।’ इस उद्बोधन के साथ उन्होंने अपने शिष्यों को विश्व के अलग-अलग कोनों में भेजा, जहाँ जाकर उन्होंने योग का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। स्वामी सच्चिदानंद, स्वामी विष्णुदेवानंद, स्वामी सहजानंद और स्वामी सत्यानंद जैसे उनके शिष्य आज दुनियाभर में योग के उत्कृष्ट प्रतिपादन के लिए सुप्रसिद्ध हैं। इस प्रकार, स्वामी शिवानंद जी के शिष्यों ने संन्यासी का जीवन और वेदांत के आदर्श को जीते हुए, योग का दुनियाभर में प्रचार किया। यह था स्वामी शिवानंद जी द्वारा संकल्पित संन्यास जीवन।

योग तरी तीरे-तीरे

स्वामी शिवानंद जी से योग-प्रचार का आदेश पाकर उनके शिष्य विश्व के अनेक क्षेत्रों में फैल गए। इसी क्रम में स्वामी सत्यानंद जी मुंगेर पहुँचे।

स्वामी सत्यानंद जी योग शिक्षक नहीं थे। उन्होंने कभी योग सीखा नहीं था। आश्रम छोड़ते समय उन्होंने स्वामी शिवानंद जी से कहा था, 'मुझे योग के बारे में कुछ नहीं मालूम। इस विषय पर मैंने कभी कोई जानकारी नहीं प्राप्त की। आप मुझसे किस तरह के योग शिक्षण की अपेक्षा रखते हैं? मैं आपके आदेश का पालन कैसे कर पाऊँगा?' स्वामी शिवानंद जी ने तब श्री स्वामीजी को थोड़े-से समय में योग के रहस्यों की दीक्षा दे दी। पाँच-दस मिनट में उन्होंने अपना सारा योग सम्बन्धी ज्ञान और अनुभव श्री स्वामीजी को हस्तांतरित कर दिया। यह इसलिए संभव हुआ कि श्री स्वामीजी स्वयं कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे।

स्वामी सत्यानंद जी का दिव्य जीवन

श्री स्वामीजी का जन्म सन् 1923 में अल्मोड़ा में हुआ था, और बचपन से ही उन्हें ऐसे असाधारण आध्यात्मिक अनुभव होने लगे, जिन्हें सामान्य लोग मानसिक कमजोरी या बीमारी समझते। लेकिन जब उनके गाँव से गुजरते हुए परिव्राजक योगी और संन्यासी उन्हें देखते तो बतलाते कि यह बालक किसी बीमारी या मानसिक दुर्बलता का शिकार नहीं, बल्कि समाधि जैसी उच्च यौगिक अवस्थाओं का अनुभव कर रहा है। वे सलाह देते कि बच्चे का रोगोपचार करने के बदले उसे किसी समर्थ गुरु के पास ले जाया जाए।

इससे उनके परिवारवालों को संकेत मिला कि श्री स्वामीजी कुछ विशेष संस्कारों और गुणों के साथ आए थे, जिन्हें पारिवारिक परिवेश में अभिव्यक्ति का पूरा अवसर नहीं मिल सकता था। इन्हीं संस्कारों और गुणों ने श्री स्वामीजी को छोटी अवस्था में घर त्यागने के लिए प्रेरित किया। अंततः वे स्वामी शिवानंद जी के सान्निध्य में सन् 1943 में आए, जब स्वामी शिवानंद जी ऋषिकेश में आश्रम की स्थापना कर रहे थे। तब से श्री स्वामीजी उनके साथ रहे, और अपने गुरु के एक ही आदेश का निरंतर पालन करते रहे – 'निःस्वार्थ सेवा में अपने आप को पूरी तरह संलग्न कर दो। अपने हर दायित्व और ज़िम्मेदारी को अच्छे से निभाओ। प्रकाश तुम्हारे अंदर है। जब तुम सेवा द्वारा पूरी तरह शुद्ध हो जाओगे, तब वह प्रकाश स्वतः सामने आ जाएगा।' अपने गुरु के इस निर्देश को हमेशा ध्यान में रखते हुए स्वामी सत्यानंद जी ने अपने

बारह वर्षों के आश्रम प्रवास में योग या वेदांत की एक भी कक्षा में भाग नहीं लिया, बल्कि आश्रम के छोटे-बड़े, हर तरह के काम में व्यस्त रहे, चाहे वह गंगा से पानी लाना हो, या रसोईघर में भोजन बनाना या पुस्तकों का सम्पादन-प्रकाशन या स्वामी शिवानंद जी के सचिव का दायित्व।

इस तरह श्री स्वामीजी ने आश्रम में अनेक भूमिकाएँ अदा कीं। गुरु-सेवा से उनका आंतरिक शुद्धिकरण होता गया, क्योंकि उन्हें अपने कर्मों से किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं थी। वे केवल अपने गुरु के सान्निध्य में रहना चाहते थे। उनमें न कोई महत्वाकांक्षा थी, न कोई अपेक्षा, न कोई कामना। ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे उनके मन में यह विचार आता कि मुझे ऋषिकेश के बाहर जाना चाहिए। अंत में स्वामी शिवानंद जी ने ही उन्हें बाहर जाने का निर्देश दिया। उन्होंने कहा, 'ऋषिकेश तुम्हारे लिए छोटा पड़ेगा। तुम बाहर जाओ, संसार तुम्हारी राह देख रहा है। योग का प्रचार द्वारे-द्वारे तीरे-तीरे करो।'



श्री स्वामीजी ने अपने गुरु से कहा, 'योग का न तो मुझे कोई ज्ञान है, न समझ, न ही अनुभव। ऐसे में आप मुझसे क्या अपेक्षा रखते हैं?' पर मिट्टी तैयार थी, और कुशल कुम्हार ने इस तैयार मिट्टी से थोड़े ही समय में सुंदर पात्र बना डाला। दस मिनट में स्वामी शिवानंद जी ने श्री स्वामीजी पर शक्तिपात कर दिया। सुयोग्य शिष्य को समर्थ गुरु से प्रचण्ड शक्ति और गहन आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुआ। एक हार्ड ड्राइव की सारी जानकारी दूसरी हार्ड ड्राइव में चली गई। स्वामी सत्यानंद जी ने जब ऋषिकेश छोड़ा, तब मानो स्वामी शिवानंद जी ही वहाँ से निकले। इस प्रक्रिया को समझना कठिन नहीं है। जब तुम किसी हार्ड ड्राइव की जानकारी दूसरी हार्ड ड्राइव में भेजते हो, तब दूसरी हार्ड ड्राइव पहली की यथार्थ प्रतिकृति बन जाती है। श्री स्वामीजी के साथ भी यही हुआ। वाणी, विचार और कर्म से वे अपने गुरु, स्वामी शिवानंद जी के पूर्ण प्रतिरूप बन गए।

ऋषिकेश छोड़ने के बाद श्री स्वामीजी ने पूरे भारत में परिव्राजन किया। इस क्रम में उन्होंने पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बर्मा, बांग्लादेश, श्रीलंका जैसे पड़ोसी देशों का भी दौरा किया।



मुंगेर-योग आंदोलन का अधिष्ठान

नौ वर्षों तक श्री स्वामीजी ने समाज की ज़रूरतों को समझने के लिए देशभर में व्यापक यात्रा की। सन् 1956 में वे पहली बार मुंगेर आए, और गंगा किनारे जहाँ आज पादुका दर्शन आश्रम है, वहीं श्री स्वामीजी को रहने के लिए एक कमरा मिला। गोलकोठी नामक उस कमरे में, जो आज भी विद्यमान है, श्री स्वामीजी अपनी साधना किया करते थे। समय-समय पर वे यहाँ आते, उच्च साधनाएँ करते, अपने आध्यात्मिक अनुभवों को गहन बनाते, और फिर जगह-जगह योग प्रचार के लिए निकल पड़ते। थोड़ा यहाँ सिखाते, थोड़ा वहाँ सिखाते, इस व्यक्ति से मिलते, उस व्यक्ति से मिलते, पुस्तक-पत्रिकाओं के प्रकाशन जैसे अन्य काम आरंभ करते, और फिर मुंगेर लौट आते।

सन् 1956 से वास्तव में मुंगेर उनका अधिष्ठान बना। वे अपनी यात्राओं और योग कार्यक्रमों के बीच एकांतवास के लिए अक्सर इसी जगह लौटते। मुंगेर में ही उन्हें एक सफेद आकृति का दर्शन हुआ, जो अचानक जमीन से प्रकट हुई थी। यह दर्शन उसी जगह पर हुआ जहाँ आज ज्योति मंदिर का दीपक जल रहा है। सफेद लिबास पहने उस व्यक्ति ने कहा था, 'यह स्थान योग का अधिष्ठान बनेगा, और योग भविष्य की संस्कृति होगी।' उसी क्षण श्री स्वामीजी को अहसास हुआ कि उनकी नियति इस स्थान से किसी तरह जुड़ी है और योग से संबंधित कोई विशाल कार्य यहाँ विकसित होगा।

गंगा दर्शन का समुद्र किनारे पूर्वदर्शन

अनेक वर्षों बाद श्री स्वामीजी ने सन् 1950 की एक घटना के बारे में हमें बतलाया। उस समय वे स्वामी शिवानंद जी के साथ अखिल भारतीय यात्रा पर निकले थे। यात्रा के दौरान वे भारत के दक्षिणी छोर पर स्थित रामेश्वरम् के प्रसिद्ध ज्योर्तिलिंग मंदिर में पहुँचे। वहाँ श्री स्वामीजी को एक अद्भुत दृश्य का अंतर्दर्शन हुआ। उस दृश्य में उन्होंने एक नदी, नदी के तट पर अवस्थित एक पहाड़ी और पहाड़ी पर बने भवनों को देखा। फिर अनेक सालों के बाद जब सन् 1977 में गंगा दर्शन के डिज़ाइन बनाकर उन्हें दिखाये गये, तब यह स्मृति पुनः उनके मानस-पटल पर उभरी। उन्होंने कहा, 'मैंने यह भवन, यह स्थान, यह आश्रम पहले देखा है, सन् 1950 की रामेश्वरम् यात्रा में।' जो आश्रम आज आप यहाँ देख रहे हैं, इसे आज से लगभग साठ साल पहले ही श्री स्वामीजी ने रामेश्वरम् में अपने भावी मिशन के रूप में देख लिया था।

14 जुलाई, 1963 को जब स्वामी शिवानंद जी महासमाधि में लीन हुए, तब श्री स्वामीजी मुंगेर में थे। संन्यास परम्परा के अनुसार जिस समय गुरु समाधि लेते हैं, तब उनके संन्यासी शिष्य जहाँ-कहीं भी हों, वहीं स्थायी रूप से बस जाते हैं। श्री स्वामीजी उस समय यहाँ मुंगेर में थे, इसलिए उन्होंने बिहार योग विद्यालय की स्थापना यहीं पर की। जिस दिन से विद्यालय की आधारशीला रखी गई, श्री स्वामीजी का ध्यान केवल इस बात पर रहा कि योग को एक विद्या, विज्ञान और जीवनशैली के रूप में कैसे विकसित किया जाए। उनके सारे प्रयत्न इसी दिशा में रहे। श्री स्वामीजी का तरीका अनोखा था, क्योंकि वे योग के केवल शिक्षक नहीं थे, बल्कि यह कहा जा सकता है कि वे ऐसे अनेक छोटे-छोटे आंदोलनों के प्रवर्तक थे, जो आगे चलकर व्यापक और विशाल बने।

संन्यास प्रशिक्षण

श्री स्वामीजी ने मुंगेर के नवनिर्मित आश्रम में संन्यासियों को प्रशिक्षण देना आरंभ किया। संन्यासियों का पहला समूह उनके पास सन् 1964 में आया, जिसमें कुल छः लोग थे। मैं भी उनमें से एक था। इसके अलावा एक नाई, एक मोची, एक मेहतर, एक कॉलेज छात्र और एक गृहिणी भी शामिल थे। श्री स्वामीजी के संन्यास प्रशिक्षण की शुरुआत इस छोटे-से समूह के साथ हुई, और निश्चित रूप से उन्होंने हमें कड़ा प्रशिक्षण दिया। फिर आश्रम द्वारा योग कक्षाओं, सत्रों और सम्मेलनों का संचालन होने लगा। मैं सन् 1964, 65 और 66 की बात कर रहा हूँ। उसके बाद एक-दो की संख्या में लोग आने लगे, योग विद्यालय से जुड़ने लगे। वहाँ नियमित रूप से पंद्रह दिन और महीने भर के प्रशिक्षण सत्र चलने लगे। भारतीयों के लिए छः महीने का योग साधना सत्र भी संचालित हुआ, जिसमें लगभग साठ लोगों ने भाग लिया। उस समय यह आश्रम की अधिकतम क्षमता थी। गंगा दर्शन के वरिष्ठतम संन्यासी और अभिभावक, स्वामी शंकरानंद सबसे पहले इसी सत्र में भाग लेने आए थे।

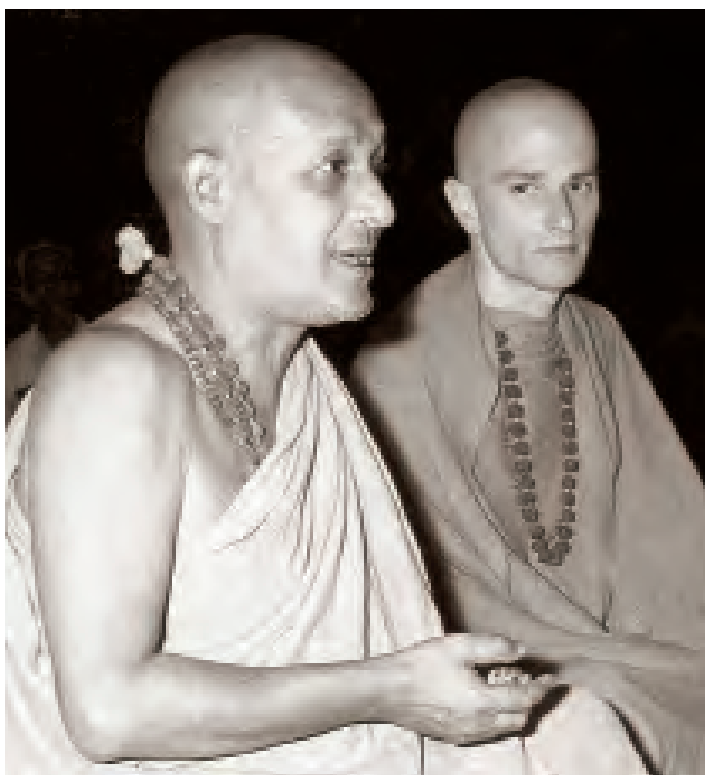
इसके बाद आश्रम में नौ महीने का अंतर्राष्ट्रीय योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र संचालित हुआ, जिसमें डेनमार्क, फ्रांस, अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया। स्वामी जनकानंद, जिन्हें श्री स्वामीजी ने सन् 1968 में प्रशिक्षित किया, डेनमार्क में योग के दूत बने। स्वामी देवात्मानंद सन् 1968 में फ्रांस में योग की प्रतिनिधि बनीं। उसी वर्ष स्वामी निर्मलानंद (उर्फ रोमा ब्लेयर) ने ऑस्ट्रेलिया में योग प्रचार का दायित्व सम्भाला।



वे संन्यासी ही थे, जिन्होंने नौ महीने का प्रशिक्षण प्राप्त कर, अपने-अपने देश लौटकर योग के प्रथम विद्यालयों और केन्द्रों की स्थापना की। तत्पश्चात् सत्तर के दशक से योग का कार्य पूरे विश्व में फैलने लगा। श्री स्वामीजी ने सन् 1970 में त्रिवर्षीय संन्यास सत्र संचालित किया, जिसमें 108 प्रतिभागी शामिल हुए। कई छोड़कर चले गए और कई टिक गए। स्वामी कैवल्यानंद उनमें से एक हैं, स्वामी गोरखनाथ उनमें से एक हैं और स्वामी नित्यबोधानंद उनमें से एक हैं। 108 के उस समूह से अनेक संन्यासी अभी भी योग आंदोलन में सक्रिय हैं, और इन्हीं लोगों ने विश्व के अनेक देशों में जाकर योगाश्रम और योग विद्यालय स्थापित किए हैं।

वास्तव में बिहार योग परम्परा का निर्माण इन्हीं संन्यासियों ने किया है। देखा जाए तो आखिर बिहार योग विद्यालय है क्या? यह केवल भवनों का एक संग्रह है, और भवन तो बाहर जाकर योग सिखाते नहीं। जो लोग किसी विचारधारा के विकास के लिए समर्पित होते हैं, वही उस विचारधारा के सच्चे प्रतिनिधि होते हैं। और जिस विचारधारा, जिस परम्परा के हम प्रतिनिधि हैं, वह है बिहार योग या सत्यानन्द योग परम्परा।

दुनियाभर में अनेक व्यक्तियों, केंद्रों और संस्थाओं द्वारा योग सिखाया जाता है। एक दृष्टि से योग भी शिक्षा जगत् के अन्य विषयों जैसा है। कला, विज्ञान और वाणिज्य के जो विषय किसी एक विश्वविद्यालय में सिखाए जाते हैं, वही दूसरे विश्वविद्यालयों में भी सिखाए जाते हैं, चाहे वह इंग्लैण्ड में हो या चीन में या अमेरिका में। इतिहास, भूगोल, गणित, कला, विज्ञान, वाणिज्य – यही विषय तो सभी विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाते हैं। लेकिन कुछ विश्वविद्यालय श्रेष्ठ और प्रतिष्ठित माने जाते हैं। क्यों? वहाँ के लोगों के कारण। उन शिक्षकों के कारण जो अपने-अपने विषय में शिक्षा का उच्चतम स्तर बनाए रखने का बीड़ा उठाते हैं। आज ऑक्सफर्ड और केम्ब्रिज के विश्वविद्यालय दुनियाभर में जाने जाते हैं। क्यों? अपने शिक्षकों, अपने प्रोफेसर्स के कारण। अगर आज ये शिक्षक बदल जाएँ, तो कल इन संस्थानों की भी प्रतिष्ठा घट जाएगी। वे साधारण संस्थान बन जाएँगे।



बिहार योग विद्यालय – योग का ऑक्सफर्ड

योग शिक्षण के लिए भी अनेक संस्थाएँ और विद्यालय हैं, जो हठ योग, राज योग और भक्ति योग जैसे योगांगों की शिक्षा देते हैं। लेकिन बिहार योग विद्यालय अपने शिक्षकों और संन्यासियों के समर्पण, निष्ठा और अथक पुरुषार्थ की वजह से आज योग का ऑक्सफर्ड बन गया है। ऐसी बहुत कम संस्थाएँ हैं जिन्होंने बिहार योग विद्यालय की तरह योग के सिद्धांतों और विधियों पर आज तक शोध और अनुसंधान जारी रखा है। बिहार योग विद्यालय के अनुसंधान का प्रमाण उस विशाल योग साहित्य में देखा जा सकता है, जिसे संस्था द्वारा नियमित रूप से प्रकाशित किया जाता है। योग और अध्यात्म के इतिहास में एक नए अध्याय की रचना में बिहार योग विद्यालय का योगदान निश्चित रूप से सराहनीय है। यह मिशन आरंभ हुआ स्वामी शिवानंद जी से, जिन्होंने अपना संकल्प स्वामी सत्यानंद जी को हस्तांतरित किया और श्री स्वामीजी से यह हम तक पहुँचा है। श्री स्वामीजी की विधि अनोखी थी। उन्होंने शास्त्रीय योग का प्रवर्तन किया, लेकिन व्यावहारिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से। उन्होंने हम सब को योग शिक्षा और योग अनुसंधान की अनुपम प्रेरणा दी।

परम्परा की निरन्तरता

बिहार योग विद्यालय के समर्पित संन्यासियों और शिक्षकों ने ही इस परम्परा की निरन्तरता और पवित्रता को बनाए रखा है। देखा जाए तो श्री स्वामीजी के लिए योग विद्यालय में संन्यास परम्परा शुरू करना अनिवार्य नहीं था। वे चाहते तो लोगों को सिर्फ योग शिक्षक बनाकर उन्हें योग केंद्र खोलने और योग सिखाने के लिए कह देते। लेकिन उनकी यह इच्छा थी, यह संकल्प था कि केवल समर्पित और निष्ठावान् लोग ही उनकी मिशन से जुड़ें। ऐसे लोग ही किसी विद्या के विकास में दीर्घकालीन और सकारात्मक योगदान दे सकते हैं, उस विद्या रूपी बगीचे को सुंदर और जनोपयोगी बना सकते हैं। अगर उनका कोई निजी स्वार्थ होगा, तो वही उनका मुख्य लक्ष्य बन जाएगा, न कि बगीचे को सुंदर बनाने का निःस्वार्थ प्रयास। जब तुम किसी बगीचे में काम करते हो तो उसे सुंदर बनाने का प्रयास करते हो या वहाँ से पौधे ले जाने की ताक में रहते हो?

श्री स्वामीजी ने कहा है कि इस मिशन की नींव तैयार कर दी गई है, ईंटें बिछा दी गई हैं। अब भवन खड़ा करने का काम तुम्हारा है, और इसके लिए हर प्रयास का स्वागत है। बिहार योग विद्यालय आज इसी मोड़ पर

खड़ा है। हर एक प्रयत्न, हर एक मदद का स्वागत है। मानवता की चेतना में अब परिवर्तन लाना अनिवार्य है। इस परिवर्तन के बिना जीवन को बेहतर नहीं बनाया जा सकता। जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि की आवश्यकता है। उस सुख-सुविधा और ऐशो-आराम का क्या फायदा, जो जीवन के स्तर में गिरावट लाए? जीवन की वास्तविक गुणवत्ता में अगर हम बढ़ोत्तरी कर सकें, तब भोग-विलास के साधन कोई मायने नहीं रखेंगे। दिव्य जीवन के इसी संकल्प की पूर्ति के लिए श्री स्वामीजी ने संन्यासियों का प्रशिक्षण आरंभ किया, ताकि समय आने पर उनमें से कोई ऐसी विभूति निकले, जिसका अनेकों लोग अनुकरण कर पाएँ। यह परम्परा वास्तव में संन्यासियों के माध्यम से ही जीवित रहेगी।

संन्यास – दूसरों के लिए जीना

कई लोगों ने इस परम्परा में दीक्षा ली है। कई लोगों ने अपने आप को योग और अध्यात्म के पथ पर समर्पित कर दिया है, और कई लोग अपने घर-परिवार में इस सजगता के साथ आध्यात्मिक जीवन जी रहे हैं कि 'मैं एक संन्यासी हूँ'। यह भी अच्छा है, क्योंकि यह सजगता, यह पहचान तुम्हें अपने व्यक्तित्व के निःस्वार्थ पक्ष से जोड़ती है। संन्यासी का मूल गुण है निःस्वार्थ भावना। श्री स्वामीजी हमसे कई बार कहा करते थे, 'गाय घास खाती है, पर तुम्हें पीने के लिए दूध देती है। गाय अपना दूध खुद नहीं पीती। वह घास और चारा खाती है, जो तुम्हारे लिए कचरा है, पर उसे खाकर वह तुम्हें दूध देती है, जिससे तुम्हें पोषण मिलता है। उसी प्रकार, नदी का पानी दूसरों के लिए है, नदी अपना पानी खुद नहीं पीती। पेड़ों के फल दूसरों के लिए हैं, पेड़ अपने फल नहीं खाते। फूलों की सुगंध दूसरों के लिए है, फूल अपनी सुगंध नहीं सूँघते।'।

इसी प्रकार संन्यासी का जीवन लोगों की भलाई के लिए है, अपनी भलाई के लिए कदापि नहीं। तुम जानते हो कि श्री स्वामीजी ने अपने संन्यासियों के बारे में क्या कहा है? 'मुझे लकड़ी नहीं, लोहा चाहिए। लोहे के बने संन्यासी ही मेरी मिशन में ठोस योगदान दे सकते हैं।' उन्होंने संन्यासियों को एक ऐसी सकारात्मक शक्ति के रूप में देखा, जो समाज को नई प्रेरणा दे सके, समाज का उत्थान कर सके। इसी विचार को हमें समझना और आत्मसात् करना है। किसी अस्पताल में रहने से ही कोई डॉक्टर बन जाता है क्या? तुम्हें चिकित्सा-विज्ञान के बारे में थोड़ी जानकारी भले ही मिल सकती है, पर औपचारिक रूप

से तुम डॉक्टर नहीं हो। उसी प्रकार केवल आश्रम में रहने से कोई संन्यासी नहीं बनता। उसके लिए कड़ी मानसिक सजगता कायम रखनी पड़ती है। ध्यान से सुनना, मैं 'कड़ी मानसिक सजगता' शब्द का उपयोग कर रहा हूँ, जिसका मतलब निरन्तर, अटूट सजगता है।

लोग अपना जीवन उसी शैली में जीते हैं जो उनके लिए सुखद और अनुकूल हो। कुछ संन्यासी अपना जीवन पारिवारिक परिवेश में जीते हैं। कर्म संन्यासी के रूप में वे अपनी जिम्मेदारियों को निभाते हैं, और यह अपनी जगह ठीक है। कुछ संन्यासी योग शिक्षक का जीवन जीते हैं। वे अनेक विद्यार्थियों को योग में प्रशिक्षित करते हैं, और वह भी ठीक है। कुछ संन्यासी समय-समय पर अपने आध्यात्मिक संबंध को पुनर्जागृत करने आश्रम आते हैं। वह भी ठीक है। और कुछ संन्यासी जीवनभर के लिए अपने आपको समर्पित कर देते हैं। हर एक व्यक्ति अपने आप को समर्पित नहीं कर सकता। कुछ संन्यासी महीनों या सालों के लिए तो कुछ जीवनभर के लिए समर्पित होते हैं। हर कोई अपना संन्यास जीवन अपने ढंग से जीता है। लेकिन जो मुख्य बात आप लोगों को समझनी है, वह है कि सत्यानंद परम्परा के संन्यासी होने के नाते श्री स्वामीजी ने हमें एक दिशा और एक संकल्प दिया है – योग और वेदांत का व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठापन। योग यहाँ मुंगेर में है और वेदांत रिखिया में। दोनों आश्रम स्वामी शिवानंद जी के उस संकल्प के दो पक्षों के प्रतीक हैं, जिसकी पूर्ति के लिए श्री स्वामीजी ने आजीवन पुरुषार्थ किया था।



प्रशिक्षण, अनुसंधान और सामाजिक प्रयोग



बिहार योग विद्यालय की स्थापना हमारे परमगुरु, स्वामी शिवानंद जी के चिंतन और संकल्प का परिणाम है। उनका यह विश्वास था कि संसार का हर व्यक्ति दिव्य जीवन जीने के योग्य है। जिन गुणों को हम अपने साथ लेकर आए हैं, उनका उपयोग करते हुए अपने जीवन को अधिक सुंदर, परिपूर्ण और सृजनात्मक बनाना, यही स्वामी शिवानन्द जी के लिए दिव्य जीवन का वास्तविक अर्थ था। उनके लिए दिव्य जीवन का मतलब दुनिया से उदासीन

हो जाना नहीं, बल्कि जीवन को भगवान का अमूल्य उपहार समझकर इसे पूरी सहभागिता और तन्मयता के साथ जीना है।

स्वामी शिवानंद जी के योग प्रचार का संकल्प

जिस दिव्य जीवन के बारे में स्वामी शिवानंद जी बतलाते थे, उसे समझाने और उसका अनुभव देने के लिए उन्होंने योग और वेदांत का माध्यम चुना। अपने सभी शिष्यों को उन्होंने यही प्रशिक्षण दिया। यद्यपि संन्यासी होने के नाते योग हमारा विषय नहीं है, फिर भी स्वामी शिवानंद जी ने विशेष रूप से अपने सभी संन्यासी शिष्यों को योग और वेदांत का प्रशिक्षण देकर उन्हें सारे विश्व में फैलकर योग का प्रचार करने का निर्देश दिया।

जब हमारे गुरु, स्वामी सत्यानंद जी को योग प्रचार का आदेश मिला तब उन्होंने भारत और आस-पास के देशों का भ्रमण शुरू किया। उनके परिव्राजन का मुख्य प्रयोजन आधुनिक मानव की मनोवृत्तियों और आवश्यकताओं का अध्ययन करना था। अपने भ्रमण के क्रम में वे मुंगेर पहुँचे, जहाँ उन्हें आध्यात्मिक जीवन की सर्वोच्च उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं। यहीं पर उन्हें स्वामी शिवानंद जी का मिशन भी स्पष्ट हुआ। अनेक दिव्य अनुभवों और आदेशों की प्राप्ति के बाद उन्होंने बिहार योग विद्यालय की स्थापना की और योग प्रचार का कार्य प्रारंभ किया। यह सब सन् 1963 में हुआ।

बिहार योग विद्यालय में प्रशिक्षण का आरंभ

सन् 1964 में छात्रों के प्रथम समूह को योग प्रशिक्षण दिया गया। ये मुख्य तौर पर मुंगेर शहर के लोग थे। उसी साल कुछ अन्य लोग श्री स्वामीजी से जुड़े और उन्होंने श्री स्वामीजी से संन्यास दीक्षा माँगी। इन लोगों में मैं भी शामिल था। हम लोग श्री स्वामीजी के प्रथम संन्यासी शिष्य बने।

श्री स्वामीजी के साथ बिताया जीवन निश्चित रूप से योगमय जीवन था। उनके सान्निध्य में हमने योग को आत्मसात् किया। उन्होंने हमें किसी तरह का औपचारिक प्रशिक्षण नहीं दिया, फिर भी हमने योग को गहराई से समझा और अनुभव किया। इसके लिए तुम्हें यह जानना होगा कि उस समय हमारा इरादा क्या था। आजकल जब लोग आश्रम आते हैं, तो किसी विशेष उद्देश्य को लेकर आते हैं। वे किसी विशेष तकनीक या विद्या को सीखने आते हैं। लेकिन हम योग सीखने के उद्देश्य से नहीं, बस अपने गुरु के साथ रहने के लिए

आए थे। हम किसी कक्षा में जा पाएँ या नहीं, कोई फर्क नहीं पड़ता था। हमें इस बात का संतोष था कि हम अपने गुरु के समीप थे, और यही हमारा जीवन था। श्री स्वामीजी हमारे आदर्श थे, हमारे सब कुछ थे। वे कैसे सोचते थे, कैसा व्यवहार करते थे, कैसे बोलते थे, कैसे सिखाते थे, कैसे जीते थे—हम इन सब बातों का बारीकी से निरीक्षण करते और उनसे शिक्षा ग्रहण करते।

बिहार योग विद्यालय में प्रारंभिक जीवन

आज जो कुछ आप यहाँ देख रहे हो, यह किसी आश्चर्य से कम नहीं। कम-से-कम मेरी समझ से तो यह बाहर है। इस संस्था के प्रारंभिक वर्षों में, मैं सन् 1963 से 1970 की बात कर रहा हूँ, हमारे पास भोजन तक के लिए पैसे नहीं होते थे, पर हमें कभी भूख नहीं सताई। छह साल की उम्र में मैं एक बड़ा-सा बोरा लेकर मुंगेर के बाज़ार जाता और रास्ते पर फेंके हुए पत्तों को उठाता। उन पत्तों को बोरे में भरकर आश्रम ले आता, जहाँ हम उन्हें साफ करते, सड़े-गले हिस्सों को निकाल देते और बचे हुए भाग को पकाते। दस लीटर पानी में शायद पालक के तीन पत्ते होते। यही हमारा भोजन था।

हमारा प्रारंभिक जीवन निश्चित रूप से बहुत कठिन था। आप में से कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि हम किन परिस्थितियों से गुजरे हैं। अगर हमें नमक मिल जाता, तो मानो दावत हो गई। हमारी यह हालत थी। ऐसी कठिन परिस्थितियों से हम गुजरे हैं। लेकिन उन परिस्थितियों की वजह से ही हमें पाई-पाई का मोल समझ में आया।

मुझे आज भी वह घटना याद है, जब किसी स्वामी ने जमालपुर स्टेशन पर एक चवन्नी खोई थी। स्टेशन आश्रम से आठ-दस किलोमीटर दूर है। उस स्वामी को स्टेशन लौटकर उस खोई चवन्नी को ढूँढकर लाना पड़ा। श्री स्वामीजी ने उसे कहा था, 'ऐसी लापरवाही मुझे स्वीकार नहीं। वापस स्टेशन जाकर उस चवन्नी को ढूँढो, और जब वह मिल जाए, तभी लौटना।' ऐसी परिस्थिति में हम अपने गुरु के साथ रहा करते थे।

समय के साथ-साथ लोग जुड़ते गए, कारवाँ बढ़ता गया। सन् 1970 में प्रथम त्रिवर्षीय संन्यास प्रशिक्षण सत्र संचालित हुआ, जिसमें 108 प्रतिभागी थे। श्री स्वामीजी ने स्वयं इस सत्र का संचालन किया। हम लोग उस समय हर प्रकार का संघर्ष, हर प्रकार की परिस्थिति झेल सकते थे, क्योंकि हमें किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं थी। भविष्य के बारे में हमारी कोई योजना नहीं थी।



आश्रम प्रवेश अधिकारी

उन दिनों मैं बहुत नटखट हुआ करता था। एक मायने में मैं ही आश्रम का प्रवेश अधिकारी था। मेरी परीक्षा से गुजरकर ही लोगों को आश्रम में स्थायी प्रवेश मिल पाता था। जब तीन साल का संन्यास प्रशिक्षण सत्र शुरू हुआ, तब लोग अपने साथ ढेरों सामान लाए थे। पर मैं उनका सब सामान ले लेता। आश्रम में भोजन कम मिलता होगा, यह सोचकर एक महिला बिस्कुट का बड़ा-सा डिब्बा लेकर आई थी। उस डिब्बे पर मेरी नज़र पड़ गई। जब वह महिला योग निद्रा का अभ्यास कर रही थी, तब मैं उसके कमरे में गया, डिब्बा उठाया और आस-पास के लोगों में मैंने सभी बिस्कुट बाँट दिये। फिर खाली डिब्बे को जैसे-का-तैसा वापिस रख दिया। योग निद्रा के बाद उस महिला को भूख लगी। उसने अपना बिस्कुट का डिब्बा खोला तो उसे खाली पाया! उन दिनों मैं इसी तरह की शरारतें किया करता था।

सत्र के 108 प्रतिभागियों में से शायद 54 मेरी वजह से चले गए! लेकिन जो लोग मेरी शरारतों को झेल सके, वही संन्यास प्रशिक्षण सत्र में टिके रहे और कालान्तर में उन्होंने ही अपना नाम रौशन किया। वही संन्यासी श्री स्वामीजी के मिशन के आधारस्तम्भ बने और श्री स्वामीजी ने उन्हें दुनिया के अलग-अलग कोनों में भेजा। स्वामी आत्मानंद, स्वामी अमृतानंद, स्वामी अखण्डानंद, स्वामी निरंजनानंद, स्वामी कैवल्यानंद, स्वामी गोरखनाथ – श्री स्वामीजी ने सब को बाहर भेजा और सन् 1971 से योग ने सही मायने में विश्व-स्तरीय आंदोलन का रूप ले लिया। इससे पहले श्री स्वामीजी ने केवल भूमिका तैयार की थी।

विश्वव्यापी योग आंदोलन

साठ के दशक में श्री स्वामीजी ने आगामी योग आंदोलन की भूमिका तैयार की थी। इस हेतु उन्होंने यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, एशिया और अफ्रीका के अनेक योग शिक्षकों को प्रारंभिक प्रशिक्षण भी दिया था। लेकिन जब उन्होंने संन्यासियों को बाहर भेजा तब जाकर विभिन्न देशों में योग केंद्रों और आश्रमों की स्थापना हुई, और संन्यासी योग सिखाने लगे। इसी दौरान मैं ऋषि वशिष्ठ और ऋषि अरुन्धती के सम्पर्क में आया था, जिन्होंने सत्तर के दशक में यूरोप के अनेक स्थानों में योग केंद्र स्थापित किए थे।



श्री स्वामीजी चाहते थे कि आध्यात्मिक प्रवृत्ति के लोगों का ऐसा समूह तैयार हो, जो एक विशिष्ट जीवनशैली, एक विशिष्ट विद्या और एक विशिष्ट अनुभव को बनाए रखने तथा उसके विकास के लिए कटिबद्ध हो। संन्यास प्रशिक्षण वह माध्यम बना जिससे लोग अपने अंदर एक ऐसी आध्यात्मिक चेतना विकसित कर पाए जो सामान्य सांसारिक स्तर से परे थी।

श्री स्वामीजी को हमेशा लगता था कि समाज में रहने वाला योग शिक्षक सामाजिक वातावरण के कारण विक्षिप्त होता है, भटक जाता है। वह हमेशा अपनी रोजी-रोटी कमाने के बारे में सोचता है। ऐसे व्यक्ति के लिए योग कभी निःस्वार्थ कार्य नहीं हो सकता। कुछ हद तक स्वार्थी प्रवृत्ति आ ही जाती है। अगर इस स्वार्थ में वृद्धि हुई तो योग व्यक्तिगत अनुभव और ज्ञान की विद्या के बजाय एक व्यापारिक कार्य हो जाएगा। इसीलिए उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि संन्यासी ही योग के निष्णात प्रचारक होने चाहिए, क्योंकि वे लोगों के साथ एक उच्च सजगता, समझ और संकल्प के साथ जुड़ सकते हैं। संन्यासी ही लोगों की सहायता करने में अधिक समर्थ हैं, क्योंकि उनमें वैराग्य, करुणा और निःस्वार्थता का भाव है। कालांतर में श्री स्वामीजी द्वारा प्रशिक्षित संन्यासियों ने ही जगह-जगह योग का प्रचार किया और सत्यानंद योग परम्परा का व्यापक विकास किया।

बुद्धि, भावना और कर्म का समन्वित विकास

श्री स्वामीजी के लिए योग प्रशिक्षण ही काफी नहीं था। उनके मन में अपने गुरु, स्वामी शिवानंद जी के निर्देश हमेशा विद्यमान थे। योग का उपयोग मानव-व्यक्तित्व के संपूर्ण और समन्वित विकास के लिए, व्यक्तित्व की प्रसुप्त प्रतिभाओं की जागृति के लिए होना चाहिए, केवल शरीर को लचीला या मन को तनाव-मुक्त बनाने के लिए नहीं। यह तो योग का छोटा-सा पक्ष है जिसे तुम अपने जीवन में अपनाते हो, पर यह योग का अंतिम लक्ष्य नहीं। योग का अंतिम लक्ष्य है मानवीय प्रकृति का सकारात्मक और रचनात्मक विकास।

स्वामी शिवानंद जी का भी यही मत और संकल्प था। वे कहा करते थे – ‘योग एक समन्वित विधि और प्रक्रिया होनी चाहिए।’ हठ योग अपने आप में सम्पूर्ण योग नहीं। राज योग, क्रिया योग या कर्म योग अपने आप में योग नहीं। इन सब के परस्पर समन्वय से ही योग का पूरा लाभ उठाना

जा सकता है, व्यक्तित्व के सभी आयामों का विकास किया जा सकता है। ये आयाम कौन-से हैं? दिमाग, दिल, और हाथ। दूसरे शब्दों में, बुद्धि, भावना और कर्म। दिमाग प्रतीक है ज्ञान, बुद्धि, विवेक, समझ-बूझ और सजगता का। दिल प्रतीक है आत्मभाव का, सरलता, स्पष्टता और करुणा जैसी कोमल भावनाओं का। और हाथ प्रतीक है कर्मठता, रचनात्मकता और दक्षता का।

क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित प्रशिक्षण पद्धति

इन तीन आयामों का विकास अनेक विधियों और अभ्यासों के संयोग से होता है। श्री स्वामीजी वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने ध्यान की विधियों का सुव्यवस्थित, क्रमबद्ध अभ्यास सिखाया। उन्होंने ही सबसे पहले प्राणायाम को सुनियोजित और क्रमिक ढंग से सिखाया। मुद्राओं एवं बंधों के सिद्धांतों और अभ्यासों को क्रमबद्ध विधि से सिखलाने वाले वे पहले व्यक्ति थे। सबसे पहले उन्होंने ही आसनों को प्रारंभिक, मध्यम और उच्च श्रेणियों में क्रमानुसार वर्गीकृत किया। प्राचीन योग शास्त्रों और परम्पराओं का सार निचोड़कर उन्होंने योग के अभ्यासों को अत्यंत सरल, स्पष्ट, व्यावहारिक और वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत किया, ताकि लोग योग के विविध एवं व्यापक परिणामों को भली-भाँति जान सकें और योग को अपने जीवन में आत्मसात् कर सकें।

श्री स्वामीजी ने जिन लोगों को प्रशिक्षण दिया, उन्होंने इस परम्परा को यथाशक्ति जारी रखा। श्री स्वामीजी ने संन्यास दीक्षा की शुरुआत कर ही दी थी, और कालान्तर में संन्यास जीवन की अनेक शैलियाँ सामने आईं। अनेक साधकों की संन्यास दीक्षा होती है, कुछ एक-दो साल के लिए रहते हैं, कुछ चार-पाँच साल के लिए। इस अवधि में वे अपना संन्यास जीवन जीते हैं। यह अपनी जगह ठीक है। वे शिक्षण-कार्य के लिए बाहर जाते हैं, सेवा-कार्य करते हैं, और जीवन का अनुभव प्राप्त करते हैं। और फिर वे समाज में लौटकर सामान्य जीवन जीते हैं। कुछ लोगों के घर-परिवार होते हैं, जिम्मेदारियाँ होती हैं। ऐसे लोग दीक्षा पाकर लौट जाते हैं और सामान्य गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियाँ निभाते हुए अपनी साधना करते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो दीक्षा प्राप्त कर गुरु के सान्निध्य में तब तक रहते हैं, जब तक उनका मार्ग स्पष्ट नहीं हो जाता, और फिर वे चले जाते हैं।



व्यक्तिगत प्रशिक्षण

आते हजारों हैं पर कुछ ही अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर पाते हैं। जो समर्पण का निश्चय कर लेते हैं, उनका प्रशिक्षण अलग तरीके से करना पड़ता है। जिन्होंने दीक्षा प्राप्त की है, पर मात्र योग शिक्षक बने रहना चाहते हैं, उन्हें अलग तरीके से प्रशिक्षित करना पड़ता है। तुम बेशक अपनी आध्यात्मिक पहचान बनाए रखो, पर यह बात याद रखो कि अभी तुम योग शिक्षक के ही स्तर पर हो, संन्यास के चरम स्तर पर नहीं। तुम संन्यास की पूर्णता नहीं हो, तुम केवल अपनी आध्यात्मिक पहचान के अनुसार जीवन जी रहे हो। ऐसे भी लोग होते हैं, जो पूर्ण समर्पण कर देते हैं और उनके लिए अलग प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

इस समय भी आश्रम में त्रिवर्षीय संन्यास प्रशिक्षण सत्र चल रहा है, पर बहुतों के लिए यह अनुभव केवल तीन साल तक सीमित है। मुझे उनका प्रशिक्षण अलग तरह से करना पड़ता है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वे तीन साल के बाद चले जाएँगे। अपने समाज में लौटकर वे अपना जीवन एक अलग आध्यात्मिक सजगता और पहचान के साथ जियेंगे, और अगर इसमें मैं उनकी सहायता कर सकूँ तो इससे उत्तम क्या होगा।

इनमें से ऐसे भी लोग होंगे जो कुछ समय और रुकेंगे, और मुझे उन्हें अलग तरह से प्रशिक्षित करना होगा। कुछ ऐसे भी होंगे जो अपना पूरा जीवन



समर्पित करने का निर्णय ले लेंगे, और उन्हें अलग ढंग से तैयार करना होगा। हर दीक्षित व्यक्ति, हर शिष्य के साथ एक ही प्रकार का व्यवहार नहीं होता, यह बात याद रखना। व्यक्ति की आवश्यकता, स्वभाव और अभिलाषा को देखते हुए प्रशिक्षण देना पड़ता है।

योग सम्बन्धी अनुसंधान

संन्यास प्रशिक्षण पद्धति शुरू करने के बाद श्री स्वामीजी ने योग अनुसंधान पर ध्यान दिया। सन् 1975 से 85 के बीच योग पर गहन अनुसंधान कार्य हुए। उन दिनों बहुत कम संस्थाएँ योग के क्षेत्र में अनुसंधान कर रही थीं। देखा जाए तो पूरे भारत में ऐसी दो ही संस्थाएँ थीं। कैवल्यधाम, लोनावाला के स्वामी कुवल्यानंद ने योगाभ्यासों पर अनेक प्रयोग किये। पर इस अनुसंधान में किये गये परीक्षण पूर्णतः शारीरिक स्तर पर थे। स्वामी कुवल्यानंद उड्डियान बंध का अभ्यास करते और शरीर के एक्स-रे चित्र निकलवाते, जिससे शरीर के विभिन्न अंगों की स्थिति का पता चलता। इस प्रकार उन्होंने शरीर के आंतरिक अंगों की अवस्था और गतिविधि पर योगाभ्यासों के परिणामों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया। तत्पश्चात् उन्होंने आसनों के आरोग्य सम्बन्धी लाभों को पहचानने का कार्य आरंभ किया।

उसी समय बिहार योग विद्यालय ने योग-चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान आरंभ किया। आसन, प्राणायाम, शिथिलीकरण और ध्यान के अभ्यासों का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है; छाती को खोलने

वाले आसन दमा और अन्य श्वसन-सम्बन्धी रोगों में कैसे मदद कर सकते हैं; उदर-क्षेत्र पर प्रभाव डालने वाले आसन मधुमेह के उपचार में कैसे सहायक हो सकते हैं; इस तरह के अनेक प्रश्नों पर शोध किए गए।

इस प्रकार बिहार योग विद्यालय के तत्वावधान में योग-चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान का श्रीगणेश हुआ। सत्तर के दशक में दमा, मधुमेह और चर्मरोग जैसे अनेक शारीरिक रोगों पर अनुसंधान हुआ। श्री स्वामीजी ने बिहार योग विद्यालय के शिक्षकों तथा संन्यासियों को विभिन्न अस्पतालों, चिकित्सा केंद्रों और अनुसंधान संस्थानों में भेजकर स्वयं इस बृहत् कार्य का समायोजन और संचालन किया। श्री स्वामीजी द्वारा भेजे गए संन्यासियों ने डॉक्टरों के साथ विचार-विनिमय कर शोध के लिए रोगियों को एकत्र किया, उन्हें योग प्रशिक्षण दिया, उनपर परीक्षण किये और शोध के परिणामों का विश्लेषण किया। जो प्रयोग सफल रहे, उनके परिणामों के आधार पर पुस्तकें लिखी गईं।

जब सत्तर के दशक में भारत में इस तरह का अनुसंधान कार्य चल रहा था, तब श्री स्वामीजी ने मुझे एक और कार्य सौंपा था—विश्व की विभिन्न सभ्यताओं में योग के प्रमाणों की खोज। मैंने इस खोज की शुरुआत दक्षिण अमेरिका से की, क्योंकि उस समय मैं कोलम्बिया में रहता था। दक्षिण अमेरिका की विविध संस्कृतियों के अध्ययन, सुदूर स्थानों और संग्रहालयों के दर्शन, तथा प्राचीन मूर्तियों और प्रतिमाओं के परीक्षण से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि किसी जमाने में दक्षिण अमेरिका में योग एक जीवन्त संस्कृति थी।

अनेक देशों के संग्रहालयों में शोध करने से मुझे स्केंडीनेविया और अफ्रीका के देशों में भी इसी प्रकार के प्रमाण मिले। इन प्रमाणों से यह साबित होता है कि एक ऐसा समय था जब योग न केवल भारत की, बल्कि दुनियाभर की संस्कृति थी। कालान्तर में अकाल, बाढ़, भूकम्प, महामारी और युद्ध जैसी घटनाओं के कारण समाज में बदलाव आया। नई परम्पराओं ने पुरानी परम्पराओं का स्थान ले लिया। यही योग के साथ भी हुआ, लेकिन सौभाग्यवश भारत में योग को सुरक्षित रखा गया। विश्व के अनेक क्षेत्रों से योग भले ही लुप्त हो गया, पर भारत में जीवित रहा, और आज योग का पुनर्जागरण भारत के माध्यम से ही हो रहा है।

श्री स्वामीजी ने मुझे किलियन फोटोग्राफी, प्राण और प्राणायाम, धारणा, मंत्र और संगीत पर भी अनुसंधान करनी की प्रेरणा दी। अपने विदेश प्रवास



के दौरान मैं अनेक स्थानों की यात्रा करता और अनेक लोगों से मिलता। अनुसंधान के लिए अनेक लोगों के साथ भेंट करना मेरे लिए आसान था। जब मैं अमेरिका में था, तब मैंने कुछ लोगों के साथ नशे की आदत से ग्रस्त और कैटाटॉनिक रोगियों पर अनुसंधान किया। हमने जेलों में और व्यसन मुक्ति के केंद्रों में भी कार्यक्रम आरंभ किए। उसी समय ऑस्ट्रेलिया में भी ऐसी गतिविधियाँ शुरू हुईं। वहाँ के संन्यासी काराओं में जाकर कैदियों को योग सिखाते। जो संन्यासी डॉक्टर थे, उन्होंने चिकित्सा विज्ञान और मनोविज्ञान में योग पर प्रयोग किए और यह जानने का प्रयास किया कि योग द्वारा रोगियों और मनोरोगियों की कैसे मदद की जा सकती है। इस प्रकार 1975 से 85 की अवधि में बिहार योग विद्यालय का मुख्य ध्येय अनुसंधान रहा। निश्चित रूप से यह खोज, अनुसंधान और उपलब्धियों का दौर था।

सामाजिक उपयोग

जब अनुसंधान-कार्य से पर्याप्त जानकारीयाँ और परिणाम एकत्र हो गए, तब योग का सामाजिक उपयोग शुरू हुआ। यह कार्य अस्सी के दशक में हुआ, जब बिहार योग विद्यालय को कोयला उद्योग, स्टील उद्योग, पेपर उद्योग, और बड़े-बड़े सरकारी संस्थानों से योग सिखाने के निमंत्रण आए। इन कार्यक्रमों के परिणामों से स्पष्ट हुआ कि योग कार्यक्षेत्र में कार्यकुशलता को

बढ़ाता है। कार्यकुशलता के बढ़ने से उत्पादन में वृद्धि होती है। अगर किसी संस्थान या उद्योग के कर्मचारी और अधिकारी, दोनों योग का अभ्यास करते हैं, तो यूनियन सम्बन्धी तनाव और संघर्ष भी घटते हैं।

इस प्रकार योग के क्षेत्र में अनेक अन्वेषण हुए, अनेक कार्यक्रम संचालित हुए और योग समाज के विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों में सम्मिलित होने लगा। श्री स्वामीजी के समय में मुख्य काम विद्यालयों, काराओं और चिकित्सा-संस्थानों, इन तीन क्षेत्रों में हुआ।

मेरी मुंगेर वापसी

सन् 1982 में श्री स्वामीजी ने मुझे कहा, 'मैं चाहता हूँ कि तुम भारत लौट आओ'। उस समय मैं अमेरिका में था। मैंने उनसे पूछा, 'किस लिए?' उन्होंने कहा, 'संस्था का कार्यभार संभालने के लिए।' मैंने कहा, 'अगर मेरी राय पूछेंगे तो मैं अमेरिका में रहकर योग का काम करना पसंद करूँगा।' उन्होंने मेरी ओर देखा, तो मैंने आगे कहा, 'पर एक बात निश्चित है। अगर आप मुझे बुलायेंगे, तो दुनिया की कोई ताकत मुझे आप के पास आने से नहीं रोक सकती।' उन्होंने कुछ नहीं कहा, और कुछ दिन बाद भारत लौट गए।

20 दिसंबर, 1982 को मुझे मुंगेर से तार मिला, '16 जनवरी तक हर हाल में भारत लौटो।' मैंने सोचा, 'उन्होंने मुझे यहाँ का सारा काम समेटने के लिए बीस दिन का समय दिया है। जैसे भी हो, बीस दिन में सब करना ही है।'



क्रिसमस का समय था, कोई हवाई टिकट नहीं मिल रही थी। सब दुकानें, सब कार्यालय बंद थे, और मैंने हाल ही में वर्जिनिया में आश्रम बनाने के लिए सौ एकड़ ज़मीन खरीदी थी। तीन दिन बाद, मुझे यह कहकर ज़मीन लौटानी पड़ी कि मुझे भारत वापस बुलाया गया है। यह किसी आश्चर्य से कम नहीं कि दस दिन में सब कुछ समेटकर, आखिरी हवाई टिकट खरीदकर 16 जनवरी तक मैं मुंगेर लौट सका।

मैं सन् 1971 से 83 तक भारत से बाहर ही रहा था। मैं हिंदी भी नहीं बोलता था। जब मैं जमालपुर स्टेशन पहुँचा, मुझे पता नहीं था कि कहाँ जाना है। ट्रेकर पकड़कर मुंगेर आया और ट्रेकर स्टैंड से रिक्षा पकड़ी। रिक्षेवाले ने मुझसे पूछा, 'कौन-से आश्रम जाना है?' मैंने कहा, 'एक ही तो आश्रम है, बिहार योग विद्यालय।' उसने कहा, 'नहीं, अब दो हैं। एक यहाँ है, और दूसरा वहाँ।' 'यहाँ' का मतलब गंगा दर्शन और 'वहाँ' का मतलब पुराना शिवानंद आश्रम। मैंने पूछा, 'सब लोग अब कहाँ रहते हैं?' उसने कहा, 'नए वाले में।' मैंने कहा, 'ठीक है, मुझे वहीं ले चलो।'

16 जनवरी को रात के समय मैं गंगा दर्शन पहुँचा। गेट पर पहुँचकर मैंने दरवाज़ा खटखटाया। 'कौन है?' अन्दर से आवाज़ आई। मैंने कहा, 'मेरा नाम स्वामी निरंजन है।' जवाब आया, 'एक मिनट रुको।' मैं कभी यहाँ रहा ही नहीं, इसलिए स्वाभाविक था कि आश्रम के संन्यासी मुझे नहीं जानते थे। उन्होंने केवल मेरा नाम सुना था, मुझे कभी देखा नहीं था। 16 जनवरी को रात के नौ बजे कड़कती ठण्ड में मुझे बाहर ही इंतज़ार करना पड़ा। मुझे सुनाई दिया कि अंदर फोन पर कोई कह रहा है, 'स्वामी निरंजन नाम का कोई आदमी गेट पर आया है।' श्री स्वामीजी ने अपने अनोखे अंदाज़ में कौतुक रचा था! उन्होंने किसी को मेरे आने की खबर नहीं दी थी। फिर मैंने फोन पर से उनकी आवाज़ सुनी, 'हाँ, उसे अंदर कर लो और मेरे कमरे में भेजो।' मैं आश्रम के अंदर आया, और मुझे उनके कमरे तक पहुँचाया गया। वहाँ उन्होंने दरवाज़ा खोला और कहा, 'स्वागतम्!'

19 जनवरी को उन्होंने मुझे आश्रम का कार्यभार सौंपा और कहा, 'मैं जा रहा हूँ।' मैंने कहा, 'आप जा रहे हैं! आपके कहने का मतलब क्या है?' उन्होंने कहा, 'वही जो तुम समझ रहे हो।' मैंने कहा, 'नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है? मैं इस जगह को नहीं जानता, यहाँ के लोगों को नहीं जानता। मैं तो यहाँ की भाषा तक नहीं जानता। आपको मुझे कुछ समय देना होगा।' उन्होंने



कहा, 'ठीक है, मैं तुम्हें कुछ समय दूँगा।' उन्होंने मुझे आश्रम-संचालन के गुरु सीखने के लिए कुछ समय दिया, फिर वे आश्रम छोड़कर चले गए, और अंत में रिखिया में जाकर बसे।

विदेश में अनेक वर्ष रहकर और वहाँ की विविध संस्कृतियों का अनुभव पाकर जब मैं भारत लौटा, तब मेरे अपने अलग विचार थे। लेकिन यहाँ आकर मुझे अहसास हुआ कि जिस आधारशीला की श्री स्वामीजी ने स्थापना की है, उसे बरकरार रखना चाहिये। भारतीय समाज के अनेक क्षेत्रों और वर्गों, जैसे, सेना, रेलवे, पुलिस, सरकारी संस्थानों और महा-उद्योगों में योग के सम्मिलित होने से योग का विकास एक अलग स्तर पर पहुँच चुका था। योग एक सामान्य शब्द हो गया था। घर-घर में लोग बिहार योग पद्धति और उसके समग्र स्वरूप को जानने लगे थे। यह संन्यासियों के योगदान और योग अनुसंधान का ही परिणाम था कि योग प्रचार का कार्य श्री स्वामीजी के संकल्पों और शिक्षाओं के निर्देशानुसार दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता जा रहा था।

योग के नए आयाम

श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने सन् 1963 में मुंगेर से योग का प्रचार आरम्भ किया। इसके अंतर्गत उन्होंने गृहस्थों को उनकी दैनिक आवश्यकताओं के अनुसार योग सिखाया। उन्होंने कुछ लोगों को ऐसा प्रशिक्षण भी दिया, जिससे वे अपने घर-समुदाय लौटकर योग शिक्षक की भूमिका निभा सकें। साथ ही उन्होंने समर्पित संन्यासियों का ऐसा दल भी तैयार किया जो दुनियाभर में योग का प्रचार करके लोगों को योग के प्रति जागरूक बना सके।

योग पर अनुसंधान

इस पूरी प्रक्रिया के दौरान श्री स्वामीजी ने योग को वैज्ञानिक और व्यावहारिक रूप से विकसित करने के लिए योग पर गहन अनुसंधान की शुरुआत की। उस समय पूरे देश में केवल दो ही ऐसे योगाश्रम थे जो योग को किताबों से पढ़ाने के बजाय एक सम्पूर्ण विषय के रूप में विकसित करने का प्रयास कर रहे थे।

पहला, पश्चिमी भारत में स्थित कैवल्यधाम आश्रम था, जहाँ आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बंध पर मौलिक अनुसंधान किया गया। और दूसरा बिहार योग विद्यालय था, जिसने देशभर में डॉक्टरों, अस्पतालों और अनुसंधान केन्द्रों के साथ मिलकर शोध कार्य आरम्भ किया। सबसे पहले संन्यासियों ने श्री स्वामीजी के मार्गदर्शन में योग-चिकित्सा पर अनुसंधान किया और यह जानने का प्रयास किया कि किस प्रकार योग विभिन्न शारीरिक, मानसिक और मनोकायिक रोगों से मुक्ति दिलाने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

इस अनुसंधान कार्य से अनेक महत्वपूर्ण जानकारीयाँ निकलीं, जो अनेक रोगोपचार सम्बन्धी पुस्तकों के लिए आधार सामग्री बनीं। चिकित्सा



के अलावा योग के अन्य आयामों, विशेषकर ध्यान के क्षेत्र में भी काफी अनुसंधान किया गया। ध्यान के दौरान मन की क्या स्थिति होती है? मन में किस तरह के अनुभव होते हैं? चेतना की कौन-कौन-सी अवस्थाओं का सामना होता है? इन सब प्रश्नों पर अनुसंधान करके विभिन्न निष्कर्ष निकाले गए। प्राण और प्राणायाम पर भी अनुसंधान किया गया। साथ ही अनेक समस्याग्रस्त वर्गों, जैसे नशे की आदत से पीड़ित लोगों, कैटाटॉनिक केन्द्रों एवं पागलखानों के मरीजों और काराओं के बन्दियों के लिए योग क्या कर सकता है, यह जानना भी इन अनुसंधान कार्यों का एक प्रयोजन रहा। धीरे-धीरे योग-चिकित्सा का दुनियाभर में बड़े पैमाने पर व्यावहारिक उपयोग होने लगा। ऑस्ट्रेलिया में सत्यानन्द योग इतना प्रचलित हो गया था कि वहाँ के प्रत्येक कारागृह में कैदियों को योग सिखाने सत्यानन्द योग शिक्षक जाया करते थे। इस प्रकार समाज के विभिन्न वर्गों में सत्यानन्द योग का व्यापक प्रचार हुआ।

जब मैं अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में था, तब श्री स्वामीजी ने मुझे विशेष तौर से ध्यान और प्राणायाम के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य करने

को कहा था। अमेरिका में मैंने अल्फा रिसर्च के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित डॉ. जो कामिया के साथ काम किया। हम दोनों ने मिलकर अन्तर्माँन और अजपाजप जैसी ध्यान की विधियों पर अनेक प्रयोग किये ताकि हम ध्यान की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले अनुभवों को जान सकें। सैन फ्रान्सिस्को, कैलिफोर्निया के ग्लैडमैन मेमोरियल सेंटर के एक जापानी डॉक्टर, डॉ. टॉड मिकुरिया ने भी मुझपर ध्यान सम्बन्धी शोध किये। जब मैं ध्यान में होता तब वे मेरी अवस्था का अवलोकन करते। एक प्रयोग के दौरान सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों ने काम करना बन्द कर दिया। लेकिन इसका कारण नहीं पता चला। हमने सेंसरों और तारों के कनेक्शन की कई बार जाँच की, लेकिन वे सभी सही थे। जैसे ही वे मेरे सिर पर सेंसर लगाते, उन्हें स्क्रीन पर सिर्फ एक सीधी रेखा नजर आती। इस आश्चर्यजनक परिणाम ने हमें प्रत्याहार के उस आयाम में अधिक गहन अनुसंधान करने के लिए प्रेरित किया, जिसमें मन और इन्द्रियों के बीच पूर्ण विच्छेद हो जाता है। श्री स्वामीजी ने भी अपने एक सत्संग में इस मनोरंजक



घटना का उल्लेख करते हुए कहा था, 'मैं निरंजन को कभी शान्त होने के लिए नहीं कहता। अगर कहूँगा तो वह अपने मन की सभी गतिविधियों को पूरी तरह बन्द कर देगा!'

किर्लियन फोटोग्राफी जैसी अन्य तकनीकों के माध्यम से प्राण शक्ति पर भी शोध किया गया ताकि हम जान सकें कि प्राणायाम और प्राण विद्या किस प्रकार हमारे शरीर में प्राण शक्ति के प्रवाह को बेहतर बना सकते हैं। इस प्रकार के अनेक अनुसंधान किये गये जिनके परिणामों ने यौगिक विधियों के विकास और प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

योग के चार स्तर

योग आंदोलन का सूत्रपात करने के बावजूद श्री स्वामीजी सिर्फ एक योग शिक्षक नहीं थे। वे तो योग के ऐसे अभियंता थे, जिन्होंने योग को जीवन के हरेक आयाम को उन्नत बनाने के साधन के रूप में देखा। उन्होंने हमेशा इस बात पर जोर दिया कि योग को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

योग अभ्यास—यह योग का प्रथम चरण है जिसमें व्यक्ति सिर्फ अपनी शारीरिक एवं मानसिक समस्याओं का निबटारा करने के लिए योग को अपनाता है। जैसे ही उसे अपनी व्याधि से छुटकारा मिल जाता है, वह अभ्यास त्याग देता है।

अगर तुम शिथिल एवं शान्त होकर चैन की नींद सोना सीख पाते हो और अपनी अनिद्रा की बीमारी का निदान कर पाते हो, तो कुछ समय बाद तुम्हारा योगाभ्यास छूट जाता है। अगर तुम्हारे दमे या अन्य श्वसन रोग का प्रकोप कम होने लगता है और तुम्हें साँस लेने में आसानी होने लगती है तो थोड़ी देर बाद जिन योगाभ्यासों से तुम्हें लाभ पहुँचा था, वे छूट जाते हैं।

लोग योग का उपयोग प्रायः इसी ढंग से करते हैं। लेकिन ये लोग योग की सिर्फ ऊपरी सतह को छू पाते हैं और उसकी गहराई से बिल्कुल अनजान रहते हैं। ये योगाभ्यासी भौरों की तरह एक फूल से दूसरे फूल पर मंडराते रहते हैं। इस प्रकार के लोग केवल शरीर और मन का ख्याल करते हैं और समझते हैं कि एक-आध महीने क्रिया योग का अभ्यास करने से वे कुण्डलिनी जगाने में सफल हो जायेंगे। अपने आपको जाने-समझे बगैर वे क्रिया योग के अभ्यास में कूद पड़ते हैं। जब उनके हाथ कुछ नहीं लगता, तो वे सोचते हैं, 'शायद

यह मेरे शिक्षक की गलती है जिस वजह से मुझे कुण्डलिनी जागरण का अनुभव नहीं हुआ।' यह योग का प्रथम स्तर है, जहाँ योग को मात्र व्यक्तिगत आवश्यकताओं और अभिलाषाओं की पूर्ति का साधन माना जाता है, और जीवन की गुणवत्ता के सुधार में योग की भूमिका को पूरी तरह उपेक्षित कर दिया जाता है।

योग साधना— योग का दूसरा चरण योग साधना कहलाता है, जिसमें साधक योग द्वारा निर्देशित लक्ष्य को प्राप्त करने की कोशिश करता है। हर योग मार्ग का एक विशेष लक्ष्य और ध्येय निर्धारित किया गया है। भक्ति योग का क्या लक्ष्य है? समाधि की प्राप्ति नहीं, बल्कि भावनाओं का शुद्धिकरण और परिष्कार। हठ योग का क्या प्रयोजन है? शरीर में प्राण शक्ति का सुनियोजन। राज योग का क्या ध्येय है? चंचल मनोवृत्तियों का नियंत्रण। इस प्रकार हर योग का एक निश्चित लक्ष्य, प्रयोजन, संकल्प और दिशा होती है। अगर तुम उस निर्दिष्ट दिशा के अनुसार आगे बढ़ सको तो तुम योगी कहलाओगे। जो योग को इस रूप में देखता है, वही योग साधक है। लेकिन अगर तुम सिर्फ अपने तनाव और थकान से मुक्ति पाने की चाह रखते हो तो तुम योगाभ्यासी हो, योग साधक नहीं।

जैसे-जैसे तुम योग के एक चरण से दूसरे चरण की ओर बढ़ते हो, वैसे-वैसे योग के साथ तुम्हारा सम्बन्ध गहन होता जाता है। जैसे-जैसे तुम अपने स्वभाव, मानसिकता, विवेक और व्यवहार में हो रहे रूपान्तरण को देखते हो, वैसे-वैसे योग के प्रति तुम्हारी श्रद्धा प्रगाढ़ होती जाती है। अगर योग ने तुम्हारे इन आयामों को प्रभावित नहीं किया, तो तुम योग साधक नहीं। तुम केवल योग के साथ आँख-मिचौली खेल रहे हो।

यौगिक जीवनचर्या और संस्कृति— अब तीसरा चरण आता है, जिसमें साधना बन जाने के बाद योग जीवनशैली में रूपान्तरित हो जाता है। तुम हर क्षण योग के सिद्धान्तों को व्यावहारिक स्तर पर जीने लगते हो। योग के अभ्यास के लिए तुम कोई अलग समय नहीं निकालते, बल्कि हर क्षण यौगिक चेतना और उपलब्धि की अभिव्यक्ति बन जाता है। योग तुम्हारी जरूरत नहीं, आदत बन जाता है।

चौथा स्तर यौगिक संस्कृति का है, जिसमें व्यक्ति योग का प्रकाशस्तम्भ बन जाता है, योग की सुरभि चहुँ ओर प्रसारित करने लगता है। उसे देखकर लोग योग की शक्ति, शान्ति, शुचिता और सम्पूर्णता का अनुभव करते हैं।



श्री स्वामीजी ने इसी को योग का विकास-क्रम बतलाया है, जिसके माध्यम से मनुष्य इस अनुपम विद्या से अधिकाधिक लाभ प्राप्त कर सकता है, अपने जीवन का कायाकल्प कर सकता है। स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि योग द्वारा मनुष्य की बुद्धि, भावना और कर्म का समन्वित विकास होना चाहिए, और योग का यह क्रम उनके इसी निर्देश को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है। प्रतिभा के समन्वित विकास से हमें अपने जीवन में यौगिक प्रक्रिया का भी गहरा और व्यापक अनुभव होता है, क्योंकि मानव प्रतिभा की वृद्धि और यौगिक प्रक्रिया का विकास एक-दूसरे पर निर्भर हैं, एक-दूसरे के पूरक हैं। इसी विचारधारा को आधार बनाकर बिहार योग विद्यालय का प्रतिष्ठापन और विकास हुआ है।

मानव प्रतिभा का विकास

श्री स्वामीजी ने अनुभव किया कि जब बड़े-बूढ़े योग की शरण में आते हैं, तो अनेक पूर्वाग्रहों के साथ आते हैं। समाज, संस्कृति, धर्म, नीति-शास्त्र और सदाचार के विचारों से प्रभावित उनका स्वभाव एक निश्चित ढाँचे के



दायरे में सीमित हो जाता है। समाज में ऐसी कितनी ही चीजें हैं जिनका मानव स्वभाव पर असर पड़ता है। इस अनुकूलित, सीमित अवस्था में चेतना के छिपे हुए गुणों का उभरना कठिन है, क्योंकि ऐसी स्थिति में ज्ञान के द्वार बंद रहते हैं।

अगर तुम ऐसा कमरा बनाओ जिसकी चार दीवारें तो हों, पर कोई खिड़की न हो, तो प्रकाश कैसे अंदर पहुँचेगा? अभी तुम्हारे सभी सम्बन्ध बाहरी चीजों से हैं, इसलिए तुम्हारी आध्यत्मिकता की समझ भी बाहरी सम्बन्धों पर आधारित है। सच्चाई तुम्हारे अंदर है पर तुम उसे देख नहीं पा रहे हो। कस्तूरी मृग की तरह तुम अंदर की चीज को बाहर खोज रहे हो। अपने मन, बुद्धि और इंद्रियों के माध्यम से बाहरी खोज करने की बजाय तुम अपनी उस अंतर्प्रज्ञा पर निर्भर रहो जो तुम्हें तुम्हारी शुद्ध, असीम प्रकृति का अनुभव करा सके।

श्री स्वामीजी केवल एक योग शिक्षक नहीं थे, इस बात को याद रखना। वे योग के प्रवर्तक थे, जिन्होंने योग के विभिन्न आयामों को विकसित किया। इस विकास-क्रम में उन्होंने योग के अवचेतन और अचेतन मन पर पड़ने वाले प्रभावों को पहचाना। उन्होंने सोचा, 'शरीर के साथ-साथ अवचेतन और अचेतन मन की शक्ति और प्रतिभा भी क्यों न विकसित की जाए?' इस

उद्देश्य से श्री स्वामीजी ने प्रत्याहार और धारणा की विधियों के माध्यम से लोगों के अवचेतन मन तक पहुँचकर उसे प्रशिक्षित करना आरंभ किया, और यह प्रशिक्षण सही समय आने पर अवश्य रंग लाता।

कई लोग उस प्रयोग के बारे में जानते होंगे जिसमें योग निद्रा के माध्यम से बच्चों को सिखाया और पढ़ाया गया। इससे यह विचारधारा सुदृढ़ हुई कि अगर बच्चों को अपनी स्वाभाविक प्रतिभा विकसित करने में सहायता दी जा सके, तो वे भविष्य के बेहतर नागरिक बनेंगे। वे इन्द्रियों और विषय-वस्तुओं की बजाय अपनी अंतरात्मा, अपनी वास्तविक प्रकृति के अधिक समीप होंगे। जब फ्रांस के विद्यालयों में योग का उपयोग होने लगा, तब इस विचारधारा को और विकसित करने का अवसर मिला।

फ्रांस के विद्यालयों में योग के प्रयोग से यह बात सिद्ध हुई कि योगाभ्यास से बच्चों की स्मरण शक्ति और मानसिक व्यवहार पर सकारात्मक असर पड़ता है। उन बच्चों की एकाग्रता अवधि बढ़ी, धारणा क्षमता बेहतर हुई, स्मरण शक्ति में सुधार हुआ, समझने की क्षमता बढ़ी, और आपसी वार्तालाप तथा व्यवहार में सुधार हुआ। उनकी चंचलता और उद्दण्डता में भी कमी आई। उन बच्चों के पूरे व्यवहार का मानो कायाकल्प हो गया। जब ये आशाजनक परिणाम उजागर हुए, तो फ्रांस के विद्यालयों में योग सिखाने की होड़ मच गई।



बच्चों के लिए योग

सत्तर के दशक के अंतिम वर्षों में ऐसी स्थिति थी कि केवल फ्रांस में 77,000 पंजीकृत योग शिक्षक थे। मैं पैंतीस साल पहले की बात कर रहा हूँ। अलग-अलग परम्पराओं, संस्थाओं और सम्प्रदायों के ये 77,000 योग शिक्षक सिर्फ फ्रांस जैसे छोटे-से देश में थे। उस जमाने के लिए यह बहुत बड़ी संख्या थी। मेरे पास आज के आँकड़े नहीं हैं, पर आप लोग खुद सोच सकते हैं कि आज वहाँ कितने योग शिक्षक होंगे। उन दिनों हमारा मुख्य काम था शिक्षकों को सिखलाना ताकि वे अपने-अपने विद्यालयों में लौटकर अपने विद्यार्थियों को प्रशिक्षित कर सकें।

आगे चलकर यह आंदोलन 'रिसर्च ऑन योगा इन एड्युकेशन' के नाम से पूरे विश्व में फैल गया। यूरोप में इस आंदोलन का सूत्रपात और नेतृत्व, पैरिस की स्वामी योगभक्ति ने किया। इसी प्रकार का आंदोलन स्वामी अरुन्धती ने कैंनेडा में शुरू किया, जिसका नाम रखा गया 'योगा एड्युकेशन इन स्कूल्स।' यह आंदोलन उत्तर और दक्षिण अमेरिका में काफी लोकप्रिय हुआ। इस प्रकार अनेक देशों की शिक्षा पद्धति में योग का समावेश किया गया।

सन् 1993 के विश्व योग सम्मेलन के बाद गंगा दर्शन में बाल योग मित्र मण्डल की स्थापना के लिए अनुकूल समय था। इस आंदोलन का आरंभ सन् 1995 में सात छोटे बच्चों से हुआ और आज बाल योग मित्र मण्डल के मुंगेर शहर में ही 5,000 से अधिक बच्चे प्रशिक्षित योग शिक्षक हैं। मुंगेर ज़िले में यह संख्या 35,000 और पूरे भारत में 1,50,000 है। इन बच्चों ने खुद अपने ऊपर व्यापक अनुसंधान भी किया। इस अनुसंधान के लिए उन्होंने तीन आसनों, दो प्राणायामों और शिथिलीकरण एवं धारणा के एक-एक अभ्यास का चयन किया। अनुसंधान में सात सौ बच्चों ने भाग लिया और उनकी स्मरण शक्ति, एकाग्रता अवधि, रचनात्मकता, व्यवहार और व्यक्तिगत अनुशासन पर हुए असर की जाँच की गई। अनुसंधान से यह प्रमाणित हुआ कि योगाभ्यास द्वारा बच्चों की मानसिक प्रतिभा और रचनात्मकता में स्पष्ट वृद्धि हुई।

अगली पीढ़ी की तैयारी

श्री स्वामीजी ने स्पष्ट कहा है कि अगर हम बच्चों तक पहुँच पाते हैं और उनके जीवन की गुणवत्ता और प्रतिभा में सुधार ला पाते हैं, तो वे अपनी



रचनात्मकता का अधिकतम उपयोग कर, अपने भावी जीवन के तनावों और संघर्षों का सामना बेहतर ढंग से कर पाएँगे। अंधेरी निशा में भी इन बच्चों को आशा की किरण नज़र आएगी।

असली योग शिक्षा बच्चों के लिए है, तुम्हारे लिए नहीं। तुम्हारी नाव तो छूट गई है। तुम्हारे लिए योग केवल आसन, प्राणायाम और शायद थोड़े-से ध्यान तक सीमित है, जिसे तुम अच्छा महसूस करने के लिए करते हो। उससे कुछ भी ज़्यादा कर पाना, अपने चरित्र और आचरण में सकारात्मक परिवर्तन ला पाना तुम्हारे लिए असंभव है। जो बन गया, सो बन गया। जो साँचे में ढल गया, सो ढल गया। बहुत कम लोग ही उस साँचे को तोड़ पाते हैं।

तुम अपने जीवन में मनोवांछित लाभ लाने के लिए योग का उपयोग अवश्य कर सकते हो, लेकिन समाज और संस्कृति की गुणवत्ता में बदलाव लाने के लिए यह जरूरी है कि नई पीढ़ी को योग से परिचित कराया जाए। यही श्री स्वामीजी का संकल्प रहा है। सन् 1995 में यहाँ बाल योग मित्र मण्डल की स्थापना के बाद, सन् 2000 में रिखिया में कन्याओं का पहला

समूह एकत्र हुआ। वहाँ जो पद्धति अपनाई गई वह यौगिक पद्धति से अलग थी। उन बच्चों की सामाजिक परिस्थिति अलग थी, उनकी आवश्यकताएँ भी अलग थीं। इस सब के बावजूद, वे बच्चे योग को अपने जीवन में आत्मसात् कर रहे हैं। योग के माध्यम से वे अपने व्यक्तित्व की संकीर्ण सीमाओं से बाहर निकल रहे हैं, और एक अद्भुत रचनात्मकता व्यक्त कर रहे हैं। जो पूर्णता और प्रवीणता बड़ों में देखने को नहीं मिलती, वह इन बच्चों में इतने सहज और सुंदर ढंग से अभिव्यक्त होती है कि देखकर आश्चर्य होता है। बच्चों के ऐसे यौगिक प्रशिक्षण द्वारा एक सुनहरे भविष्य का निर्माण करना बिहार योग विद्यालय का एक प्रमुख प्रयोजन और लक्ष्य है।





SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

बिहार के छोटे-से नगर, मुंगेर के गंगा दर्शन विश्व योगपीठ में अवस्थित बिहार योग विद्यालय, सत्यानन्द योग परम्परा का जन्मस्थान है। श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा सन् 1963 में स्थापित यह संस्थान एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर का योग प्रशिक्षण केन्द्र होने के साथ-साथ एक वैदिक शैली का गुरुकुल और संन्यास आश्रम भी है।

इस पुस्तक में स्वामी सत्यानन्द जी के उत्तराधिकारी और योगपीठाधीश, स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती ने बिहार योग विद्यालय के इतिहास का विहंगम चित्र प्रस्तुत करते हुए बतलाया है कि किस प्रकार परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी की शिक्षाओं और निर्देशों से इस संस्था का बीजारोपण और स्वामी सत्यानन्द जी के पुरुषार्थ से मुंगेर में इसका श्रीगणेश हुआ; स्वामी सत्यानन्द जी के नेतृत्व में कौन-कौन सी उपलब्धियाँ अर्जित की गईं और उनकी अपनी अध्यक्षता में योग आंदोलन का किन-किन क्षेत्रों में विस्तार हुआ। स्वामीजी ने न केवल उन घटना-क्रमों का निरूपण किया है जिन्होंने संस्था का विकास-मार्ग प्रशस्त किया, बल्कि इस संस्था के निदेशक सिद्धांतों और विचारधाराओं पर भी प्रकाश डाला है। यह पुस्तक उन सभी योगप्रेमियों के लिए है जो योग के इस बृहत् स्मारक के इतिहास को जानने में रुचि रखते हैं।



ISBN :978-93-81620-67-0